हिन्दी सिनेमा और सांप्रदायिक सौहार्द

14

सुमित वर्मा
शोधार्थी (इतिहास विभाग)
गोकुलदास हिन्दू गर्ल्स कॉलेज, मुरादाबाद
महात्मा ज्योतिबा फुले रुहेलखंड
विश्वविद्यालय, बरेली
ईमेलः sumitverma644@gmail.com

डॉ. किरन त्रिपाठी
शोध निर्देशिका (इतिहास विभाग)
गोकुलदास हिन्दू गर्ल्स कॉलेज, मुरादाबाद
महात्मा ज्योतिबा फुले रुहेलखंड
विश्वविद्यालय, बरेली
ईमेलः kirantripathi2008@gmail.com

सारांश

भारतीय सिनेमा का स्वरूप केवल मनोरंजन से ही नहीं जुड़ा है, बल्कि यह समाज की स्थिति को सशक्त रूप से प्रदर्शित भी करता है। यह सामाजिक परिवर्तन और सांप्रदायिक सौहार्द को बढ़ावा देने का एक प्रभावी माध्यम भी है। भारत में बनी अनेक फिल्में सांप्रदायिक सौहार्द, धार्मिक सहिष्णुता और सामाजिक समानता और समरसता को बढ़ावा देने के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण रही हैं। 1950 के दशक से वर्तमान समय तक कई फिल्मों में सांप्रदायिक सौहार्द को फिल्मों का विषय बनाया गया, जिनमें मुख्य रूप से धर्मपुत्र (1961), अमर अकबर एंथोनी (1977), बॉम्बे (1995), हे राम (2000), माय नेम इज खान (2010), ओ माय गॉड (2012), पीके (2014) आदि प्रमुख रहीं। इन फिल्मों के माध्यम से समाज में सद्भावना, भाईचारे और सामाजिक समरसता का संदेश दिया गया। ये फिल्में एक समावेशी समाज के निर्माण का प्रयास करती हैं और सांप्रदायिक वैमनस्य एवं हिंसा के दुष्प्रभाव को उजागर करती हैं। प्रस्तुत शोध पत्र भारतीय सिनेमा के इसी स्वरूप का चित्रण एवं विश्लेषण करता है। शोध पत्र यह भी विश्लेषित करता है कि फिल्में सांप्रदायिक तनाव को किस प्रकार कम करती हैं और धार्मिक कट्टरता तथा भेदभाव के खिलाफ समाज के पूर्वाग्रह को दूर करते हुए लोगों को जागरूक करने का कार्य करती हैं। वर्तमान में सांप्रदायिक सौहार्द को बढ़ावा देकर भविष्य के लिए अधिक संवेदनशील और जिम्मेदार समाज का निर्माण करती हैं, जिससे समाज को एक नई दिशा मिल सके।

मुख्य शब्द

भारतीय सिनेमा, सामाजिक परिवर्तन, सांप्रदायिक सौहार्द, ,धार्मिक सहिष्णुता, सामाजिक समरसता, धार्मिक सद्भावना, भाईचारा, समावेशी समाज, सांप्रदायिक हिंसा, पूर्वाग्रह की समस्या।

प्रस्तावना

भारत एक विविधता से भरा देश है, जहां विभिन्न जातियों, धर्मों और संस्कृतियों का सदियों से सौहार्दपूर्ण सह–अस्तित्व रहा है, लेकिन कई बार सांप्रदायिक संघर्षों ने समाज के विभाजन और विघटन का कार्य भी किया है। भारतीय सिनेमा का सांस्कृतिक पक्ष इस क्षेत्र में अत्यधिक सशक्त रूप में सामने आया है, जिसने अपने अनेक कथानकों में सांप्रदायिक सौहार्द को आधार बनाकर धार्मिक सहिष्णुता का प्रभावशाली संदेश दिया है। अनेक संवेदनशील भारतीय फिल्म निर्माताओं और लेखकों ने महत्वपूर्ण और ज्वलन्त सामाजिक मुद्दों के माध्यम से दर्शकों को सकारात्मक संदेश देते हुए भारतीय संस्कृति की 'विविधता में एकता' की परिकल्पना को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करने का कार्य किया है। समय–समय पर इन सकारात्मक प्रस्तुतियों ने जनमानस को वैचारिक रूप से उद्वेलित किया है और सम्प्रदायवाद तथा साम्प्रदायिक हिंसा जैसे विघटनकारी विचारों को समाज में बढ़ने से रोकने का कार्य भी किया है।

शोध उद्देश्यः

- 1950 के पश्चात फिल्मों के द्वारा किस प्रकार सांप्रदायिक सौहार्द को चित्रित किया गया है।
- उन फिल्मों का विश्लेषण करना जो धार्मिक सहिष्णुता पर आधारित हैं।
- किस प्रकार फिल्में सांप्रदायिक सौहार्द को बढ़ावा देती हैं, उन तथ्यों का विश्लेषण करना।
- यह जानने का प्रयास करना कि किस प्रकार दर्शक इन फिल्मों से संदेशों को ग्रहण कर सकते हैं ?
- फिल्में सामाजिक समरसता को बढ़ावा देने में किस हद तक सफल रही हैं, विश्लेषण करना।

अनुसंधान पद्धति

शोध में भारतीय सिनेमा में अभिव्यक्त सांप्रदायिक सौहार्द के अध्ययन और विश्लेषण के लिए गुणात्मक अनुसंधान पद्धति के माध्यम से ऐतिहासिक, व्याख्यात्मक और आलोचनात्मक दृष्टिकोण को अपनाया गया है।

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य – सिनेमा और सांप्रदायिक सौहार्द

भारतीय सिनेमा का इतिहास 1913 में दादा साहेब फाल्के की फिल्म 'राजा हरिश्चंद्र' के साथ आरंभ अवश्य हुआ था, लेकिन पौराणिक कथानकों के अतिरिक्त सिनेमा में आम जन से जुड़े विभिन्न मुद्दों के साथ ही सांप्रदायिक सौहार्द प्रमुख सामाजिक विषय के रूप में सदैव मौजूद रहा है। भारत के स्वतंत्रता संघर्ष और आजादी मिलने के साथ ही ये विषय फिल्मों का एक अनिवार्य हिस्सा बन गए। इनका अध्ययन निम्न चरणों में किया जा सकता है।

1950 से 1970 के दशक का सिनेमा एवं सांप्रदायिक सौहार्द

1950 से 1970 का दशक विभाजन की पीड़ा से भरा हुआ था। देश को सांप्रदायिक सौहार्द, सामाजिक समरसता और भाईचारे के संदेश की आवश्यकता थी। भारतीय सिनेमा ने इस दायित्व को बखूबी पूरा किया। इस अवधि में ऐसी फिल्मों का निर्माण किया गया, जो धार्मिक सहिष्णुता और राष्ट्र की एकता को मजबूती प्रदान करती थीं। 'हम एक हैं' (1946) फिल्म भारतीय सिनेमा में धर्मनिरपेक्षता और राष्ट्रीय एकता का सबसे प्रारंभिक चित्रण है। यह फिल्म स्वतंत्रता के ठीक पहले भारतीय समाज को धार्मिक कट्टरता और विघटन से बचाने का एक प्रेरणात्मक प्रयास थी। इसने सौहार्दपूर्ण सिनेमा के निर्माण को आधार प्रदान किया। इसी क्रम में ''सामाजिक विषमताओं की पृष्ठभूमि पर आधारित विमल राय की फिल्म 'दो बीघा जमीन' एक ऐसे यथार्थ और भारतीय किसानों के दुःख दर्द की कहानी है, जो महाजनी प्रथा के चंगुल में फंसा है तो उससे मुक्त नहीं होता और कर्ज में ही अपनी जीवन लीला समाप्त कर लेता है।''(1)''दो बीघा जमीन (1953) के माध्यम से भारतीय सिनेमा ने जमींदारी प्रथा और गरीब किसानों के बीच के संघर्ष को प्रदर्शित किया। यह फिल्में दर्शाती है कि धर्म और जाति से परे होकर लोगों को एक–दूसरे की मदद करनी चाहिए''(2) इससे पूर्व ''1941 में वी. शांताराम की 'पड़ोसी' फिल्म आई, जिसके माध्यम से समाज में धर्म के नाम पर फैली हुई गलतफहमियों को दूर करने का प्रयास किया गया।''(3) ''हम लाए हैं तूफान से कश्ती निकाल कर' जैसे गीतों के माध्यम से 'जागृति' (1954) फिल्म ने राष्ट्रीय एकता को बढ़ाने का प्रयास किया। इसी प्रकार 'इंसानियत' (1955) फिल्म भी दोस्ती बलिदान और सामाजिक समरसता पर आधारित थी। इसके साथ–साथ ''1957 की फिल्म 'नया दौर' ने ग्रामीण भारत में आधुनिकता बनाम परंपरा की लड़ाई को प्रदर्शित किया। इस फिल्म के माध्यम से यह बताया गया कि किस प्रकार हिंदू–मुस्लिम–सिख समुदाय सभी आपस में मिलकर काम करते हैं, संघर्ष करते हैं और एक दूसरे का सहयोग करते हैं।''(4) 1959 में प्रदर्शित फिल्म 'धूल का फूल', हिंदी सिनेमा के इतिहास में एक ऐसी फिल्म रही जिसने नाजायज संतान, सामाजिक कलंक, पितृत्त्व की जिम्मेदारी, और धार्मिक सौहार्द जैसे विषयों को प्रस्तुत किया। धूल का फूल में एक हिन्दू परिवार को एक मुस्लिम बच्चे का पोषण करते दिखाया गया है। इसी फिल्म का एक गाना' तू हिंदू बनेगा न मुसलमान बनेगा, इंसान की औलाद है इंसान बनेगा' के माध्यम से धर्मनिरपेक्षता और इंसानियत जैसे मुद्दों को आधार मिला। 1960 के पश्चात आचार्य चतुरसेन के उपन्यास पर आधारित फिल्म 'धर्मपुत्र' भारत के विभाजन की पृष्ठभूमि में धार्मिक कट्टरता के दुष्प्रभाव को उजागर करती है। ये फिल्में दोनों ही धर्मों के उदार तथा कट्रवादी स्वरूप को दर्शाते हुए सांप्रदायिक वैमनस्य को भुलाने का संदेश देती हैं। 'शहीद' (1965) एवं 'उपकार' (1967) जैसी फिल्मों ने राष्ट्रवाद को सर्वोपरि माना। इन फिल्मों के माध्यम से ही यह दशक समाज सुधार एवं एकता की भावना को बढ़ावा देने वाला काल बन सका।

1970–1990 : सामाजिक संरचना में बदलाव और धार्मिक सहिष्णुता का काल

1970 से 1990 के बीच में भारतीय समाज एवं राजनीतिक परिदृश्य बदलाव के दौर से गुजर रहा था, आपातकाल, सांप्रदायिक दंगे जैसी घटनाएं समाज में अस्थिरता और धार्मिक विभाजन को बढ़ावा दे रही थीं। इसी पृष्ठभूमि पर हिंदी सिनेमा के द्वारा धार्मिक सहिष्णुता एवं सांप्रदायिक सौहार्द को बढ़ावा देने के लिए महत्वपूर्ण फिल्में बनाई गईं, जिनमें 'अमर अकबर एंथोनी'(1977), 'गाँधी'(1982), 'सलाम बॉम्बे' (1988), एवं 'धर्म संकट' (1989) आदि शामिल थीं। इनमें 'अमर अकबर एंथोनी' फिल्म के माध्यम से समाज में धर्म से बढ़कर मानवीय रिश्ते को अहमियत दी गई और इसके साथ–साथ सांप्रदायिक सौहार्द को विशेष दृष्टि से देखा गया। इस फिल्म के माध्यम से तीन भाइयों को बिछड़ने के बाद अलग–अलग धर्म को सौहार्दपूर्ण रूप से अपनाते हुए दिखाया गया है। 'गांधी' फिल्म के द्वारा रिचर्ड एटनबरो ने महात्मा गांधी के जीवन को इस तरह पर्दे पर प्रदर्शित किया कि हिंदू मुस्लिम एकता को बल मिल सका और सांप्रदायिक दंगों का प्रभाव कम हो सका''(5) धर्मसंकट फिल्म का मुख्य संदेश सांप्रदायिक विचारधारा की निरर्थकता से जुड़ा है। धर्म का आधार लेकर लोगों में मतभेद उत्पन्न करने वाले लोगों के प्रति भी यह दर्शक को सचेत करती है। यह भी दिखाती है कि किसी भी धर्म या समुदाय में व्यक्ति का जन्म हुआ हो, जब तक उसे अपने मूल की जानकारी नहीं है, उसका मन मस्तिष्क उस समुदाय की परंपराओं और रीति रिवाजों के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेता है, जिसमें वह पल रहा होता है। लेकिन जैसे ही पता चलता है कि उसका मूल समुदाय यह नहीं है तो इस स्थिति में व्यक्ति के मानसिक द्वन्द्व को यह फिल्म दिखाती है। यहां दर्शक को जाति और मजहब से परे इंसानियत का एहसास होने लगता है।

1990 से 2010 तक का दशक सामाजिक चेतना पर आधारित फिल्में :

1990 से 2010 के दशक के दौरान सांप्रदायिक और सामाजिक बदलाव को भारतीय सिनेमा के द्वारा प्रस्तुत किया गया, इसी दौरान उन सिनेमैक्स का निर्माण किया गया, जिनके द्वारा संवेदनशील मुद्दों को समाज के सम्मुख रखा जा सके। ''फिल्म बॉम्बे (1995) के द्वारा बाबरी मस्जिद विध्वंस किए जाने एवं मुंबई दंगों पर आधारित विषय को पर्दे पर प्रस्तुत किया गया। इस फिल्म के माध्यम से यह प्रदर्शित किया गया कि सांप्रदायिक तनाव के कारण किस प्रकार लोगों को कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।''(7) फिल्म

सरफरोश' (1999) एवं 'गंगाजल' (2003) के माध्यम से आतंकवाद, तथा जातीय और सांप्रदायिक हिंसा को विशेष रूप से प्रदर्शित किया गया। 'हे राम' (2000) के द्वारा गांधी जी की हत्या और सांप्रदायिकता जैसे मुद्दे को पर्दे पर प्रस्तुत किया गया।''(8) अमृता प्रीतम के उपन्यास पर आधारित 2003 की फिल्म पिंजर भारत के विभाजन की पृष्ठभूमि पर बनी है। फिल्म में विभाजन के दौरान हुई हिंसा, स्त्री उत्पीड़न की घटनाओं को देखते हुए दर्शक की मानवीय संवेदनाएं उभर कर आती हैं। साथ ही यह फिल्म सांप्रदायिक सौहार्द एवं सहिष्णुता के अनेक आयामों को उजागर करती है। पूरो और राशिद के माध्यम से यह दर्शकों तक यह संदेश ले जाने में कामयाब होती है कि जाति और मजहब से परे प्रेम और इंसानियत आज भी महत्वपूर्ण है। 'परजानिया' (2005) फिल्म से 2002 के गुजरात दंगों व 'ब्लैक फ्राईडे' (2007) के द्वारा 1993 के मुंबई बम धमाकों की घटना को पर्दे पर प्रस्तुत किया गया। वर्ष 2010 में आई फिल्म 'माय नेम इज खान' ''के द्वारा शाहरुख खान ने इस्लामोफोबिया एवं सांप्रदायिक पूर्वाग्रह जैसे मुद्दों को देश के सामने रखने का प्रयास किया।''(9)

2010 के बाद का दशक : नई चुनौतियां

2010 के बाद डिजिटल मीडिया और वैश्विक मंच पर भारतीय फिल्मों की पहुंच बढ़ने लगी, जिससे सामाजिक एवं सांप्रदायिक मुद्दों को भारतीय फिल्मों के द्वारा अधिक प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया जाने लगा। सांप्रदायिक सौहार्द पर आधारित कई फिल्मों का निर्माण किया गया, जिनमें मुख्य रूप से 'पीके' (2014), 'मुल्क' (2018), 'केसरी' (2019), 'आर्टिकल–15' (2019), 'तानाजी द अनसंग वॉरियर' (2020) आदि फिल्में शामिल हैं। प्रत्येक फिल्म स्वयं में विशिष्ट रही। जहां पीके फिल्म के द्वारा धार्मिक कट्टरता और अंधविश्वास पर व्यंग्य किया गया, वहीं ''मुल्क फिल्म के द्वारा मुस्लिम परिवार पर आतंकवाद के झूठे आरोप जैसे मुद्दों को समाज के सम्मुख रखने का प्रयास किया गया, जिससे हिंदू मुस्लिम एकता को बल मिला''(10) 'केसरी' फिल्म के द्वारा पर्दे पर यह दिखाया गया कि भारतीय सैनिकों में देशभक्ति की भावना सर्वोपरि है। यह फिल्म राष्ट्र की एकता और बलिदान की भावना को प्रोत्साहित करती है। इसी प्रकार अन्य फिल्मों ने भी 2010 के पश्चात भारतीय सिनेमा मे सांप्रदायिक सौहार्द को अधिक यथार्थवादी व वैश्विक दृष्टिकोण प्रदान करने का प्रयास किया। धार्मिक कट्टरता, भेदभाव और आतंकवाद जैसे मुद्दों पर चर्चा भारतीय सिनेमा की विषय वस्तु में प्रमुखता से शामिल होती चली गई, जिससे समाज पर निश्चित रूप से सकारात्मक प्रभाव डाला।

निष्कर्ष

भारतीय सिनेमा के माध्यम से सांप्रदायिक सौहार्द को निश्चित रूप से बढ़ावा दिया गया है, यह शोध पत्र दर्शाता है कि भारतीय सिनेमा समाज में किस प्रकार राष्ट्र की एकता, अखंडता व बंधुत्व जैसी भावनाओं को मजबूत करने में सहायक रहा है। लेकिन निरंतर बढ़ते हुए सांप्रदायिक तनाव एवं विभिन्न चुनौतियों ने भारतीय सिनेमा के सम्मुख भी विभिन्न विषयों को रख दिया है। सांप्रदायिक हिंसा के प्रभाव का उजागर होना या युवा पीढ़ी की जागरूकता या विभिन्न संस्कृतियों का आपस में जुड़ाव आदि मुद्दों को भारतीय सिनेमा बखूबी प्रस्तुत करता है, आवश्यकता बस इतनी है कि वैश्वीकरण के इस दौर में उन मुद्दों का चयन किया जाए जो समाज के सर्वांगीण विकास और परस्पर सद्भाव के लिए आवश्यक हों।

संदर्भः–

1. आउटलुक पत्रिका में ''दो बीघा जमीन'' फिल्म पर लेख, 4 दिसंबर 2017 वेबसाइटः www.outlookindia.com
2. कबीर, नसरीन, मुन्नी (1990) टॉकिंग फिल्म्सः कन्वर्सेशन ऑन हिन्दी सिनेमा विद जावेद अख्तर, oup इंडिया प्रकाशन
3. मुखर्जी. बी (1993) बॉम्बे सिनेमाः एन आर्काइव ऑफ द सिटी, परमनेंट ब्लैक प्रकाशन
4. गंगराडे, अशोक (1980) सिनेमा एंड सोसाइटी इन इंडिया, रेगल पब्लिकेशन
5. चक्रवर्ती. एस (1993) नेषनल आइडेंटिटी इन इंडियन पॉपुलर सिनेमा 1947–1987, यूनिवर्सिटी ऑफ टैक्सास प्रेस प्रकाशन
6. थॉमस. आर (2014), बॉम्बे बिफोर बॉलीवुडः फिल्म सिटी फैनटसिस, ओरिएण्ट ब्लैकस्वान www.researchgate.net
7. चक्रवर्ती. एस (1993) नेशनल आइडेंटिटी इन इंडियन पॉपुलर सिनेमा 1947–1987, यूनिवर्सिटी ऑफ टैक्सास प्रेस प्रकाशन
8. सेन. एम (2017) द क्राइसिस ऑफ सिक्योरिज्म इन इंडिया, ड्यूक यूनिवर्सिटी प्रेस प्रकाशन
9. बोस. मिहिर (2018), बॉलीवुडः ए हिस्ट्री,द हिस्ट्री प्रेस लिमिटेड
10. सिन्हा, अनुभव, (2018), पटकथा मुल्क, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली